एक और इन्तिफ़ादा

आजादी, स्वाभिमान और मानवीय गरिमा के लिए बहादुर फलस्तीनी छात्र-नौजवान एक बार फिर सड़कों पर

अरविन्द सिंह

लगभग सात वर्षों की बेचैन खामोशी के बाद एक बार फिर इन्तिफादा फूट पड़ा है। नया इन्तिफादा—यानी फलस्तीनी जनता का नया जनउभार—एक आजाद फलस्तीन के लिए, इंसाफ और मानवीय गरिमा की हिफाजत के लिए। 1987-1992 तक चले इन्तिफादा के पहले ज्वार की तरह इस बार भी बहादुर फलस्तीनी छात्र-नौजवान संघर्ष की अगली कतारों में हैं और कुर्बानियों की नयी-नयी मिसालें कायम कर रहे हैं।

नये इन्तिफादा ने दुनिया को जता दिया है कि स्वशासन के नाम पर अपने वतन की लूली-लंगड़ी आजादी फलस्तीनी जनता को स्वीकार नहीं। अमेरिकी सरपरस्ती और अपनी फौजी ताकत से मगरूर इस्रायली शासकों को भी यह दो-टूक सन्देश मिल गया है कि फलस्तीनी जनता शान्ति जरूर चाहती है, लेकिन अपने स्वाभिमान और मानवीय गरिमा को खोकर नहीं। पिछले चार महीनों से इस्रायली फौजें बर्बर दमन-चक्र चला रही हैं, लेकिन दबने के बजाय इन्तिफादा जोर पकड़ता जा रहा है।

पिछले चार महीनों में अब तक चार सौ से भी अधिक फलस्तीनी नागरिक, जिनमें अधिकतर नौजवान हैं इस्रायली बमबारी और गोलीबारी में शहीद हो चुके हैं। लेकिन हर नयी शहादत उनके इरादों को और अधिक फौलादी बनाती जा रही है। इन्तिफादा की गर्मी समूचे अरब जगत में पहुंच चुकी है। अरब देशों की जनता भी फलस्तीनी अवाम के समर्थन में सड़कों पर निकल पड़ी है। इसने वहां के शासकों को भी मजबूर कर दिया है कि बेमन से ही सही वे फलस्तीनी जनता के पक्ष में हरकत में आयें। इन्तिफादा शुरू होने के एक महीने के भीतर ही अरब देशों के शासकों को एक सम्मेलन के जरिये इस्रायली शासकों को कड़ी चेतावनी देने के लिए मजबूर होना पड़ा।

यह सब देखकर इस्रायली शासकों और उनके आकाओं की रातों की नींद हराम है। फलस्तीनियों से निपटने के सवाल पर इस्रायली शासकों में पहले से मौजूद दरार और अधिक चौड़ी हो गयी है। इन्तिफादा शुरू होने के बाद इस्रायली राजनीति में जो उठापटक मची वह उनके बीच मची हड़बोंग का ही नतीजा है। इस्रायली प्रधानमंत्री एहुद बराक द्वारा अचानक इस्तीफा देकर चुनाव कराने की घोषणा, चुनाव में इस्रायली शासक वर्ग के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी धड़े के प्रतिनिधि लिकुड पार्टी के नेता एरियल शेरोन की 6 फरवरी के चुनाव में प्रधानमंत्री के पद पर जीत और जीत के बाद सबको साथ लेकर चलने की घोषणा—यह सब उनके बीच मची फूट और अफरातफरी का जाहिर होना है।

इधर, फलस्तीनी मुक्ति संगठन के नेता यासर अराफात के लिए भी इन्तिफादा खुशियों से ज्यादा चिन्ता का सबब बन गया है। शान्ति वार्ताओं की मेज पर कोई समझौता न होने पर सड़क पर उतरे लोगों की भावनाओं को नजरअन्दाज करना उनके लिए पहले से कहीं अधिक मुश्किल हो गया है। पिछले समझौते का कड़ुआ घूंट पी चुके लोग इस बार शायद अराफात को माफ न कर पायें। खासकर फलस्तीनी युवाओं की बगावती भावनाओं को नजरअन्दाज करना इस बार अराफात के लिए महंगा साबित हो सकता है।

ओस्लो समझौता और फलस्तीनी जनता के साथ खुला विश्वासघात

13 सितम्बर 1993 को नार्वे की राजधानी ओस्लो में अमेरिकी मध्यस्थता में फलस्तीनी नेतृत्व और इस्रायली शासकों के बीच हुआ समझौता फलस्तीनी जनता की चाहतों को पूरी तरह दर्ज नहीं कर सका था।

1993 के ओस्लो समझौते में फलस्तीन के लगभग 73 प्रतिशत भूभाग पर सिर्फ 33 प्रतिशत यहूदी आबादी के लिए इस्रायली राज्य को औपचारिक रूप से सुपर्द कर देना पड़ा था। दरअसल यह फलस्तीनी नेतृत्व की मजबूरी थी। पर जो हासिल हुआ, उसे फलस्तीनी जनता किसी भी रूप में दिल से स्वीकार नहीं कर सकती थी। समझौते में गाजा पट्टी और पश्चिमी तट के जेरिको क्षेत्र में फलस्तीनी मुक्ति संगठन को सिर्फ सीमित स्वशासन का अधिकार मिला। यह समझौता हुआ था कि इन क्षेत्रों में इस्रायली सैनिक प्रशासन की जगह पी.एल.ओ. पुलिस ले लेगी लेकिन सिर्फ पर्यटन, शिक्षा, कल्याण, स्वास्थ्य व कराधान पर ही पी.एल.ओ. का अधिकार होगा। राज्यसत्ता के केन्द्रीय विषयों—एक स्वतंत्र सेना व राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण, दूसरे राष्ट्रों के साथ स्वतंत्र संधियां करने एवं नागरिक समाज के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियंत्रण का अधिकार फलस्तीनी जनता को नहीं मिल सका था।

ओस्लो समझौते में यह भी तय हुआ था कि गाजा पट्टी और पश्चिमी तट से धीरे-धीरे इस्रायली सेना पूरी तरह हट जायेगी, पूर्वी यरूशलम सहित गाजा पट्टी और पश्चिमी तट में यहूदी बस्तियां बसाने का सिलसिला खत्म होगा और पहले से बसाये गये लोगों को वापस बुला लिया जायेगा। फिर वार्ताओं के सिलसिले के जरिये अरब देशों में रह रही लगभग 40 लाख आबादी (जो कुल फलस्तीनी आबादी के 60 प्रतिशत से अधिक है), इस्रायल के गैलिली क्षेत्र में रह रही अरब आबादी (जो कुल इस्रायली आबादी का 18 प्रतिशत है) के भविष्य और इस्रायली जेलों में बन्द फलस्तीनी राजनीतिक बन्दियों के सवाल पर, फलस्तीनी राज्य के स्थायी सीमांकन और गाजापट्टी व पश्चिमी तट के बीच सुरक्षित आवाजाही के सवाल पर अन्तिम निर्णय तक पहुंचने का करार किया जायेगा।

लेकिन, समझौते के बाद पिछले सात वर्षों के दौरान इस्रायली शासक वर्ग ने फलस्तीनी जनता के साथ खुला विश्वासघात किया।

इस्रायली सुरक्षाबलों पर विशाल गुलेल से पत्थर फेंकते फलस्तीनी नौजवान

वार्ताओं के दौरान उसने किसी भी महत्वपूर्ण मुद्दे पर एक इंच भी झुकने से इंकार कर दिया। मध्यस्थता के नाम पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अपनी कूटनीतिक चालों से इस्रायली शर्तों को ही फलस्तीनी अवाम पर थोपने की कोशिश की। यरूशलम पर अपना दावा छोड़ने को इस्रायल कतई तैयार नहीं हुआ। इस बात पर इस्रायली वार्ताकार अड़े रहे कि फलस्तीनी आबादी के केन्द्रों के बाहर इस्रायली सेनाओं की मौजूदगी बनी रहनी चाहिए जिससे जब वह चाहे उनकी तैनाती कर सके। फलस्तीनी राज्य को सम्पूर्ण सम्प्रभुता देने की दिशा में छोटे से छोटा कदम उठाना वह टालता रहा और अपने विस्तारवादी मंसूबों की खातिर फलस्तीनी जनता की भावनाओं को कुचलता रहा, उसके मनोबल को तोड़ता रहा, स्वाभिमान को रौंदता रहा, अपमानित करता रहा।

गाजापट्टी और पश्चिमी तट के फलस्तीनी स्वशासन वाले क्षेत्रों में इस्रायली फौजों द्वारा रोज-रोज उत्पीड़न की कार्रवाइयां बदस्तूर जारी रहीं। बेवजह फलस्तीनियों को जेलों में बन्द करना, गाजा पट्टी और पश्चिमी तट के बीच आवाजाही के नियंत्रण के लिए बनाये गये इस्रायली फौजी चेक पोस्टों पर चेकिंग के नाम पर लोगों को अपमानित करना तथा यहूदी बस्तियों को बसाना जारी रहा। अकेले यरूशलम में दो लाख यहूदियों को बसाया गया। फलस्तीनी स्वशासन वाले गाजा पट्टी व पश्चिमी तट के क्षेत्रों में भी दो लाख से अधिक यहूदी आबादी को बसाया गया। समझा जा सकता है कि बदगुमान इस्रायली शासकों की तमाम कारगुजारियों से फलस्तीनी अवाम की जिन्दगी कितनी घुटनभरी हो चली थी।

एक खामोश ज्वालामुखी फूट पड़ा और दहकता लावा बह निकला

इस्रायली शासक वर्गों और उनके आकाओं को यह गुमान था कि इन्तिफादा के पहले ज्वार के खत्म होने के बाद अब थकी-थकी हुई फलस्तीनी जनता चुपचाप उनकी शातिराना चालों को बर्दाश्त करती रहेगी। इसीलिए उन्होंने ओस्लो समझौते की आड़ में फलस्तीनी अवाम को अपमानित करने और उनके मनोबल को तोड़ने के लिए लगातार कार्रवाइयां जारी रखीं। लेकिन यहीं पर वे चूक गये। ऐसा अक्सर होता है। सत्ता के मद में चूर प्रतिक्रियावादी शासक जनता की शक्ति का आकलन करने में अक्सर चूक जाते हैं।

ओस्लो समझौते से फलस्तीनी अवाम के दिलों में जो जख्म पैदा हुआ था, वह धीरे-धीरे भर सकता था और एक बेहद छोटे भूभाग पर ही सही एक आजाद स्वाभिमानी फलस्तीनी राष्ट्र की त्रासद नियति को वे शायद स्वीकार भी कर लेते। लेकिन इस्रायली शासकों ने अपनी कारगुजारियों से लगातार पुराने जख्मों को न केवल कुरेदा वरन् नये-नये जख्म भी देते रहे। दूसरी ओर फलस्तीनी नेतृत्व के रवैये से भी फलस्तीनी अवाम के अन्दर धीरे-धीरे निराशा घर करने लगी थी। वार्ताओं से फलस्तीनी अवाम के लिए उनका नेतृत्व कुछ भी हासिल नहीं कर पा रहा था। यहां तक कि जेलों में बन्द राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के सवाल पर भी कुछ हासिल न हो सका। नेतृत्व से फलस्तीनी जनता के असन्तोष का अनुमान सिर्फ एक घटना से लगाया जा सकता है। नवम्बर 1998 में राजनीतिक बन्दियों की रिहाई कराने में असफल फलस्तीनी वार्ताकार अबू माजेन (जो यासिर अराफात के उत्तराधिकारी माने जाते हैं) पर गाजा में नौजवानों के समूह ने हमला कर दिया था। मध्यस्थता के नाम पर इस्रायली पैरोकारी कर रहे अमेरिका की चालबाजी भी बेपर्द हो चुकी थी और अपने निहित स्वार्थों के लिए अरब देशों के शासकों की तरह-तरह की पैंतरेबाजियों से फलस्तीनी अवाम के दिलों में यह भावना घर करती जा रही थी कि शान्ति प्रक्रिया के नाम पर चल रही कवायदों से कुछ हासिल होने वाला नहीं।

गहरी घुटन, अपमानबोध, निराशा, असन्तोष की मनःस्थिति में जी रही फलस्तीनी जनता की बेचैनी घनीभूत होती जा रही थी। खासकर युवाओं के अन्दर आक्रोश का एक लावा अन्दर ही अन्दर धधक रहा था जो फूट पड़ने के लिए मुहाना तलाश रहा था। इन्हीं हालात में पिछले 28 सितम्बर को इस्रायली शासक वर्ग के घुर दक्षिणपंथी धड़े के नेता एरियल शेरोन (उस समय विपक्षी नेता और विगत 6 फरवरी के चुनावों के बाद नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री) की सुनियोजित यरूशलम यात्रा ने जनाक्रोश के ताप को चरम बिन्दु पर पहुंचा दिया। सुषुप्त ज्वालामुखी को मुहाना मिला और वह फूट पड़ा।

यूं तो, शेरोन की यात्रा यरूशलम स्थित 'टेम्पुल माउण्ट' की लिकुड पार्टी के अपने प्रतिद्वंद्वी पूर्व प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतान्याहू पर राजनीतिक वरीयता हासिल करने की नीयत से आयोजित की गयी थी, लेकिन इसने फलस्तीनी अवाम की भावनाओं को बुरी तरह आहत कर दिया। यह वही शेरोन है जो 1982 में लेबनान के शातिला और साबरा शरणार्थी शिविरों में किये गये नरसंहार का प्रमुख सूत्रधार था। वह लगातार फलस्तीनी अवाम को अपमानित करने वाले बयान देने के लिए कुख्यात रहा है। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री एहुद बराक ने भी अपनी राजनीतिक चालबाजी (गैर यूरोपीय यहूदी आबादी, जिसके बीच मुख्यतः लिकुड पार्टी का जनाधार है, को नाराज न करने की रणनीति) के चलते शेरोन की यात्रा का कोई विरोध करने के बजाय लगभग 3000 इस्रायली सशस्त्र सैनिकों की सुरक्षा मुहैया करायी। यह सब फलस्तीनी स्वाभिमान को गहरा आघात पहुंचाने वाला साबित हुआ। और जब शेरोन की यात्रा के विरोध में प्रदर्शन कर रहे फलस्तीनी युवाओं पर इस्रायली सैनिकों ने अंधाधुंध गोलीबारी कर दी, जिसमें 7 फलस्तीनी युवक मारे गये और दर्जनों जख्मी हुए तो सब्र का बांध टूट पड़ा। और इस तरह फिर शुरू हुआ एक और इन्तिफादा। फलस्तीनी अवाम

अपनी अस्मिता और गरिमा की हिफाजत के लिए, अपनी आजादी के लिए एक बार फिर जनसैलाब के रूप में सड़कों पर उतर पड़ा।

पुराने अनुभवों से लैस नया इन्तिफादा

नये और पुराने इन्तिफादा में समानता यह है कि दोनों बार इसकी शुरुआत तब हुई है जब "शान्ति प्रयासों" के नाम पर फलस्तीनी जनता की आजादी को साम्राज्यवादियों, इस्रायली एवं अरब जगत के शासकवर्गों के निहित स्वार्थों से प्रेरित घटिया सौदेबाजियों में उलझाकर स्थगित करने या सीमित करने की चालें चली गयीं। 1967-77 के दौरान फलस्तीनी मुक्तिसंघर्ष का आगे बढ़ता हुआ कारवां आगे चलकर गतिरोध का शिकार हुआ था, जब अगले एक दशक तक "शान्तिवार्ताओं" के जरिये फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल को लटकाया जाता रहा। इसी दौर में अमेरिकी देखरेख में मिस्र और इस्रायल के बीच **कैम्प डेविड समझौता** 1979 में हुआ था जिसमें अपने संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिए मिस्र ने फलस्तीनी जनता के साथ विश्वासघात किया था। इस समझौते में उसने अधिकृत क्षेत्र में इस्रायली प्रभुत्व के अन्तर्गत तथाकथित फलस्तीनी स्वायत्तता की सोच को अपनी स्वीकृति दे दी थी। इस विश्वासघात के बदले इस्रायल ने 1982 तक कई चरणों में पीछे हटकर सिनाई प्रायद्वीप मिस्र को वापस लौटा दिया था। अपने-अपने निहित स्वार्थों के चलते सीरिया, लेबनान, लीबिया, जार्डन आदि देशों के शासक वर्गों ने 1977-87 के गतिरोध के दौर में फलस्तीनी आजादी के संघर्ष में मदद के बजाय फलस्तीनी मुक्ति संगठन में ही तरह-तरह से फूट डालने की कोशिश की थी। यासिर अराफात पी.एल.ओ. का मुख्यालय बनाने के लिए मारे-मारे फिर रहे थे, क्योंकि सबने लाल झण्डी दिखा दी थी। आखिरकार, अराफात को ट्यूनीशिया ने शरण दी थी। यह सब फलस्तीनी जनता के लिए विक्षोभकारी था। इन्हीं हालत में 1987 में इन्तिफादा का पहली बार विस्फोट हुआ था। ओस्लो समझौते के बाद पिछले सात वर्षों में शान्तिवार्ताओं की जो कवायद चली है, उसके मद्देनजर नये इन्तिफादा की पृष्ठभूमि में विश्वपरिस्थितियों में हुए फिलहाली बदलावों के अलावा कमोबेश एक-सी परिस्थितियां काम कर रही थीं।

लेकिन, दोनों इन्तिफादा में कुछ अहम फर्क हैं जो फलस्तीन के भविष्य को तय करने में अहम भूमिका निभायेंगे।

गाजा पट्टी में इस्रायली सैनिकों के हमले में दीवार में हुए छेद से झांकता फलस्तीनी बच्चा

पिछले इन्तिफादा के दौरान गाजा पट्टी और पश्चिमी तट के फलस्तीनी युवाओं ने इस्रायली हथियारबन्द सेनाओं का मुकाबला मुख्यत: गुलेलों, पत्थरों और पेट्रोल बमों से किया था। लेकिन, इस बार फलस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण (Palestinion National Authority, P.N.A.) के 40000 सुरक्षाकर्मी उनके साथ हैं, जिनके पास टैंक, मिसायलें और हेलीकॉप्टर तो नहीं हैं, लेकिन अन्य अत्याधुनिक हथियार मौजूद हैं। हालांकि, इस बार भी फलस्तीनी युवा गुलेलों की मार से इस्रायली सैनिकों पर वार कर उनकी नाक में दम किये हुए हैं। एक बार फिर वे उस यूनानी पौराणिक कथा की याद दिला रहे हैं जिसमें डेविड नाम के बालक ने भीमकाय गोलियथ को गुलेल से पत्थर चलाकर मार गिराया था।

नया इन्तिफादा पुराने के अनुभवों से लैस है। **एक स्वत: स्फूर्त जनउभार के रूप में शुरू हुआ पहला इन्तिफादा जल्दी ही एक संगठित जनान्दोलन में तब्दील हो गया था। बेहद कुशलता के साथ इन्तिफादा नेतृत्व ने संगठित प्रदर्शनों व आम हड़तालों को युवाओं की छापामार कार्रवाइयों के साथ जोड़ दिया था। इसके साथ ही बर्बर दमन-उत्पीड़न का मुकाबला करने की जरूरत ने नेतृत्व को भूमिगत होकर जनकार्रवाइयां संचालित करना सिखा दिया था। धीरे-धीरे फलस्तीनी जनता की समान्तर सत्ता का एक तंत्र भी विकसित होने लगा था। गांवों और नगरों में पापुलर कमेटियों का गठन करने के साथ-साथ उत्पादन व अन्य सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए आत्मनिर्भरता की दिशा में ठोस कदम उठाये गये थे। स्कूलों-कालेजों की बन्दी के बावजूद फलस्तीनी शिक्षकों ने बर्बर दमन-उत्पीड़न का मुकाबला करते हुए जनशिक्षा के नये-नये प्रयोग किये। यहां तक कि जेलखाने भी शिक्षालय बन गये थे।** पहले इन्तिफादा के ये तमाम अनुभव इन्तिफादा के नये दौर के लिए एक शानदार विरासत के रूप में मौजूद हैं, जिनसे प्रेरणा लेते हुए और सीखते हुए इस बार इन्तिफादा नेतृत्व अधिक परिपक्वता के साथ नेतृत्व का संचालन कर रहा है।

विगत सात वर्षों के सीमित स्वशासन के दौरान फलस्तीनी मुक्ति संगठन के अल-फतह घटक (यासिर अराफात जिसके नेता हैं) से जुड़े नेताओं व प्रशासनिक अधिकारियों पर आम मेहनतकश फलस्तीनी जनता का विश्वास कमजोर हुआ है। 'हमास' और 'जेहाद' जैसे उग्र इस्लामिक गुटों और पी.एफ.एल.पी., (पीपुल्स फ्रंट फॉर दि लिबरेशन ऑफ पैलेस्टाइन) जो मेहनतकश वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा में विश्वास करता है, के बीच से कोई नया नेतृत्व उभरने की परिस्थितियां इस बार अधिक परिपक्व दिख रही हैं। यदि ऐसा नहीं होता है तो भी इतना तय है कि इस बार 'इन्तिफादा' का दबाव फलस्तीनी मुक्ति संगठन के वर्तमान नेतृत्व पर इतना जरूर रहेगा कि वह इस्रायली शासकों को कोई ऐसा रू-रियायत देने का साहस नहीं कर सकेगा, जो फलस्तीनी आम जनता, खासकर नौजवानों की भावनाओं के खिलाफ हो।

नये इन्तिफादा के साथ इस बार एक और नयी चीज आकर जुड़ी है। इस्रायली राज्य की सीमा के भीतर गलीली क्षेत्र में रहने वाली 18 प्रतिशत अरब आबादी पिछली बार इन्तिफादा के समर्थन में बहुत खुलकर सामने नहीं आयी थी। इस बार उसने खुलकर अपनी भावनाओं का इजहार किया है। इस्रायली पुलिस और कट्टर जियनवादी सशस्त्र दस्तों के साथ तीखी झड़पों में इस क्षेत्र में भी अब तक दो दर्जन से अधिक लोग मारे जा चुके हैं।

इन्तिफादा ने एक बार फिर फलस्तीनी राष्ट्र की आजादी के सवाल को समूचे पश्चिम एशिया में शान्ति का एक प्रमुख केन्द्रीय मुद्दा बना दिया है। इस सवाल से किसी न किसी रूप में जुड़े सभी पक्षों के लिए—इस्रायल, अमेरिका, दूसरे साम्राज्यवादी देशों और अरब देशों के शासकों के लिए फलस्तीनी आजादी के सवाल को लटकाये रखना अब सम्भव नहीं रह गया है। इन्तिफादा की यह एक तात्कालिक सफलता है। लेकिन आगे का रास्ता अभी कठिन, उलझा हुआ और बेहद चुनौती भरा है।

लन्दन में रह रहे इस्रायली नागरिकों द्वारा इस्रायली दूतावास को सौंपा गया खुला पत्र

"इस्रायली नागरिक होने के नाते हमसे आज यह कहा गया है कि हम प्रधानमंत्री पद के उन दो दावेदारों के बीच चुनाव करें जिनमें से हरेक शान्ति बहाल करने का दावा कर रहा है। हम इस चुनाव से इनकार करते हैं क्योंकि यह राजनीतिक रूप से ध्यान भटकाने वाला है। मध्यपूर्व का संघर्ष प्राथमिक रूप से शान्ति के बारे में नहीं है। यह निहत्थे फलस्तीनियों पर बर्बर इस्रायली गोलीबारी के बारे में है। यह लगभग समूचे पश्चिमी तट पर किये गये इस्रायली कब्जे के बारे में है। यह उसके द्वारा फलस्तीनी शरणार्थियों के अधिकारों को मान्यता न देने के बारे में है। यह अरब यरूशलम के किसी भी हिस्से पर फलस्तीनी सम्प्रभुता से इस्रायल के इनकार के बारे में है। जब तक ये खौफ जारी रहेंगे, तब तक फलस्तीनियों को यह अधिकार है कि वे उस "शान्ति" जैसे शब्द से इतर किसी चीज के लिए संघर्ष करें जिसके साथ अबतक काफी खिलवाड़ हो चुका है। वे भी "अपने देश में एक स्वतंत्र नागरिक होने" का अधिकार रखते हैं, जो मांग खुद इस्रायल के राष्ट्रगान में उठायी गयी है।

प्रधानमंत्री के रूप में जो भी चुना जाये, हमारी उससे यह मांग है कि अधिकृत क्षेत्रों से इस्रायली सेनाओं और बसाये गये लोगों को अविलम्ब वापस बुलाया जाये। बिना यह महत्वपूर्ण कदम उठाये इस्रायल द्वारा शान्ति के बारे में की जाने वाली सारी बातें बकवास के सिवा कुछ नहीं हैं।

हस्ताक्षर 6 फरवरी, 2001

फलस्तीनी युवाओं के कन्धों पर एक ऐतिहासिक जिम्मेदारी

फलस्तीनी आजादी की मंजिल अभी कितनी दूर है और यह किस शक्ल में मिलेगी, इन सवालों का जवाब तो आने वाला समय खुद देगा, लेकिन एक बात बेहिचक कही जा सकती है कि इन्तिफादा की इसमें सबसे अहम भूमिका होगी। अब तक चले इन्तिफादा ने फलस्तीनी आजादी की राह में रोड़े अटकाने वाली ताकतों के भीतर जो खलबली पैदा की है, वह अभी एक तात्कालिक सफलता ही है। लेकिन अगर सभी रोड़ों को हटाकर मंजिल तक पहुंचना है तो इन्तिफादा न केवल जारी रहना चाहिए बल्कि पिछले अनुभवों से मिले कीमती सबकों की रौशनी में इसे अधिक दूरगामी रणनीति के तहत परिपक्व वैचारिक जमीन पर अधिक व्यापक रूप में संगठित और गोलबन्द करना होगा।

आज कई मायनों में हालत 1993 की तुलना में फलस्तीनी मुक्ति के लिए अनुकूल दिखायी दे रही हैं। सबसे पहली बात तो यह कि इस्रायल शासक वर्ग आज अभूतपूर्व संकटों में उलझा हुआ है। नये प्रधानमंत्री के रूप में एरियल शैरोन का चुनाव इन्तिफादा शुरू होने के बाद आम इस्रायली यहूदी आबादी के बीच उभरी तात्कालिक फलस्तीन विरोधी भावनाओं की एक अभिव्यक्ति है। ओस्लो समझौते के बाद के वर्षों में इस्रायली समाज के भीतर कुछ ऐसे परिवर्तन हुए हैं जो जियनवाद के आधारों को खोखला बनाते जा रहे हैं। तीसरी दुनिया के तमाम देशों की तरह इस्रायली शासकों ने भी अपनी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों को दूर करने के लिए निजीकरण-उदारीकरण की आत्मघाती राह पकड़ी है। इस राह पर चलने का नतीजा यह हुआ है कि छंटनी-तालाबन्दी-बेकारी ने इस्रायली समाज के भीतर वर्गीय ध्रुवीकरण को तेज कर दिया है। पिछले सात-आठ वर्षों में कारखानों-दफ्तरों के मजदूरों-कर्मचारियों की लम्बी-लम्बी हड़तालें हुई हैं।

एक जैसी मुसीबतों से घिरे लोगों के बीच जिस तरह करीबियां पैदा होती हैं और अपने पुराने मनमुटाव दूर होने लगते हैं, कुछ ऐसा ही इन वर्षों में इस्रायली समाज में घटित होता रहा है। इस्रायल के गैलिली क्षेत्र में रह रही अरब आबादी (जो अधिकांशतः मेहनतकश आबादी है और जिनके सस्ते श्रम के बर्बर शोषण से इस्रायली पूंजीपति वर्ग की समृद्धि की दास्तान लिखी गयी है) और छंटनीशुदा यहूदी बेकार मजदूरों, परेशानहाल मध्यवर्ग के बीच एकता का एक नया आधार पैदा हुआ है, जिसने जियनवाद के सामाजिक आधार में गहरी दरारें पैदा कर दी हैं। यही वजह है कि फलस्तीनी आजादी के सवाल को जल्दी से जल्दी हल करने के पक्ष में इस्रायली जनमत लगातार झुकता गया है। इस्रायली शासकों के लिए यह दबाव बाध्यकारी बनता जा रहा है कि वे फलस्तीनी मसले को हल करें।

इसके साथ ही अरब देशों के साथ पूरी तरह सामान्य रिश्ते कायम न कर पाना भी इस्रायल के आर्थिक संकट को विकट बनाता जा रहा है। इन देशों के साथ जल्द से जल्द व्यापार व अन्य आर्थिक रिश्तों को सामान्य बनाना एक अहम बाध्यकारी कारक बन गया है। जाहिर है फलस्तीनी मसले का हल न हो पाना इसकी सबसे बड़ी बाधा है।

इस्रायली पक्ष की पैरोकारी अमेरिकी साम्राज्यवाद की पश्चिम एशियाई नीति की बुनियाद है, लेकिन यह बुनियाद भी अब उतनी ठोस नहीं रह गयी है। अरब देशों की जनता के दबाव के आगे खाड़ी देशों की अमेरिकापरस्त शेखशाहियां और अन्य बुर्जुआ सत्ताएं भी फलस्तीनी पक्ष के साथ खड़ी होने पर आज मजबूर हैं। फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और अन्य पश्चिमी देश भी अपने-अपने निहित स्वार्थों के कारण अमेरिका की पश्चिम एशियाई नीति के साथ नहीं खड़े हैं। अमेरिकी-इस्रायली गंठजोड़ का अलगाव कितना अधिक है, इसका अनुमान सिर्फ इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जब इन्तिफादा शुरू होने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद में यासिर अराफात ने यह प्रस्ताव पेश किया कि गाजा पट्टी और पश्चिमी तट में शान्ति बहाली के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन एक सशस्त्र पर्यवेक्षक दल नियुक्त किया जाये तो इस्रायल के विरोध का साथ देने के लिए अमेरिका के अलावा कोई नहीं बचा। सिर्फ रूस और चीन तटस्थ रहे थे। शान्ति प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए वार्ताओं के दायरे को बढ़ाने की अराफात की मांग पर अन्दर ही अन्दर एक सहमति का वातावरण बनता दिख रहा है। खुद भीषण आर्थिक संकटों का शिकार अमेरिका आज अपनी पश्चिम एशिया नीति को उसी रूप में आगे बढ़ाने में असमर्थ दिख रहा है, जिस रूप में सोवियत साम्राज्यवादी खेमे के विघटन के बाद पैदा हुई अनुकूल परिस्थितियों में वह उसे आगे बढ़ाता रहा है।

इस्रायल और उसके सरपरस्त अमेरिका की ये तमाम मजबूरियां फलस्तीनी आजादी के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल परिस्थितियां तैयार कर रही हैं। साम्राज्यवादी देशों के भीतर भी जनमत फलस्तीनी आजादी के पक्ष में झुकता हुआ दिख रहा है। अमेरिका में बसे यहूदियों का एक अच्छा-खासा हिस्सा भी इस्रायली शासकों पर फलस्तीनी मसले को हल करने के लिए दबाव बना रहा है। पिछले छह फरवरी

को इस्रायल में प्रधानमंत्री पद के लिए हुए चुनावों के दिन लंदन में बसे यहूदियों ने इस्रायली दूतावास को एक ज्ञापन सौंपा जिसमें इस्रायली सेनाओं द्वारा फलस्तीनी जनता पर चलाये जा रहे दमन-चक्र को अविलम्ब रोकने व फलस्तीन को इस्रायली कब्जे से मुक्त करने की मांग की गयी थी। (देखें बॉक्स)।

दुनिया के स्तर पर उभर रही इन परिस्थितियों के दबाव का ही नतीजा है कि प्रधानमंत्री का चुनाव जीतते ही एरियल शेरोन का स्वर बदल गया है। फलस्तीनी सवाल को हल करने के लिए इस्रायली फौजों को बेलगाम छोड़ देने की मांग उठाने वाला हेकड़ीबाज अचानक शान्ति की भाषा बोलने लगा है और राजनीतिक मतभेदों को भुलाकर एक राष्ट्रीय सरकार बनाने का न्यौता दे रहा है। जाहिर है कि यह शेरोन का हृदयपरिवर्तन नहीं इन्तिफादा और दुनिया के जनगण के दबाव और संकटों से पैदा हुई मजबूरियां हैं।

इन तमाम अनुकूल परिस्थितियों को फलस्तीन की आजादी की हकीकत में तब्दील करना अब सिर्फ इस बात पर निर्भर करता है कि इन्तिफादा जारी रहता है या नहीं। यह इन्तिफादा नेतृत्व के सामने एक चुनौती है कि वह गाजापट्टी और पश्चिमी तट के साथ ही इस्रायल के भीतर और अरब देशों के शरणार्थी शिविरों में रह रही फलस्तीनी आम आबादी को एकसूत्र में पिरोते हुए नये-नये कारगर उपकरणों का आविष्कार कर पाता है या नहीं। इन्तिफादा के जारी रहने के लिए यह भी जरूरी है कि पुराने अनुभवों से सीखते हुए पापुलर कमेटियों का प्रयोग नयी मंजिल में आगे बढ़ता रहे। साथ ही, सबसे अहम बात विचारधारात्मक रूप से परिपक्व होने और इसकी बुनियाद पर क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन के नेतृत्व में समूचे फलस्तीनी मेहनतकश अवाम को संगठित करना। यदि, इस बार यह सम्भव हो सका तो दुनिया के अनुकूल हालात को फलस्तीनी राष्ट्र की हकीकत में और कुछ खोये बिना तब्दील किया जा सकता है। कहने की जरूरत नहीं कि इसका दारोमदार बहादुर फलस्तीनी युवाओं पर अधिक है। इतिहास ने उनके कन्धों पर यह जिम्मेदारी सौंप दी है, जिसे उन्हें पूरा करना ही होगा।

●

बोलते आंकड़े चीरवती सच्चाइयां

➪ भारत का विदेशी व्यापार घाटा पिछले 40 सालों में 2485 करोड़ से बढ़कर 1,19,142 करोड़ रुपये हो गया। विदेशी कर्ज के सूद और किश्तों का भुगतान 296 करोड़ से बढ़कर 5,56, 530 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। इस दौरान कुल विदेशी देनदारी 6,75,672 करोड़ रुपये हो गयी। देश पर कुल विदेशी कर्ज 1960-61 में 250 करोड़ था जो 1998-99 के अंत में 9,800 करोड़ रुपये पहुंच चुका है। (स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण के विभिन्न अंकों के आधार पर 'फिलहाल' पत्रिका की गणना)

➪ पिछले दस वर्षों में भारत में कुल 1,02,785 करोड़ रुपये की विदेशी पूंजी आयी जबकि इसी अवधि में मुनाफा, सूद वगैरह के रूप में 1,01,781 करोड़ रुपये यानी आयी हुई विदेशी पूंजी का 99 प्रतिशत बाहर चला गया। (स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 2000, भारत सरकार)

➪ रोजगार कार्यालय में दर्ज बेरोजगारों की संख्या 4 करोड़ 6 लाख हो गई है।

➪ आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के तहत निजीकरण और विनिवेश की तेज होती प्रक्रिया, छंटनी और तालाबंदी से बड़े पैमाने पर लोगों को रोजगार से हाथ धोना पड़ रहा है और रोजगार के नये अवसर नहीं के बराबर दिखायी दे रहे हैं।

➪ श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1999-2000 के अनुसार पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या में हर वर्ष 20 लाख की बढ़ोत्तरी हो रही है।

➪ कुल रोजगार प्राप्त लोगों में से 8 या 9 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में हैं और शेष असंगठित क्षेत्र में हैं। संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर लगातार कम हो रहे हैं।

➪ नेशनल सैंपल सर्वे के ताजा नतीजों के मुताबिक 1999-2000 में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों के लिए रोजगार के अवसर दो प्रतिशत और महिलाओं के लिए तीन प्रतिशत घट गये। शहरी क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसरों में एक प्रतिशत की गिरावट आयी।

➪ यूनिसेफ की रिपोर्ट 'विश्व के बच्चों की स्थिति 1999' के मुताबिक

- 6 से 11 वर्ष आयु वर्ग के करीब 50 फीसदी भारतीय बच्चे स्कूल से बाहर हैं।
- स्कूल जाने वाले बच्चों में से करीब 50 फीसदी बच्चे पांचवीं कक्षा में पहुंचने से पहले ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।
- 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूरी करने वाले बच्चों में करीब आधे बच्चे ज्ञान के अनिवार्य न्यूनतम स्तर को भी नहीं प्राप्त कर पाते।
- स्कूल से बाहर निरक्षर बच्चों की सबसे बड़ी संख्या भारत में है।
- भारत में कुल अशिक्षितों में दो-तिहाई महिलाएं हैं।
- दुनिया का हर तीसरा निरक्षर व्यक्ति भारतीय है और भारत ने दुनिया के सबसे बड़े निरक्षर देश के रूप में 21वीं सदी में प्रवेश किया है।

➪ शिक्षा पर होने वाले खर्च का 50 फीसदी उच्च शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले महज 10 फीसदी सुविधासम्पन्न लोगों की पढ़ाई-लिखाई पर खर्च हो जाता है। बाकी 30 फीसदी हिस्सा आबादी के शेष 90 फीसदी लोगों को मिलता है।

➪ 7.26 करोड़ बच्चे बेसिक शिक्षा से भी वंचित हैं।

➪ राजधानी दिल्ली में 54 प्राइमरी स्कूलों में पीने के पानी और 83 स्कूलों में बिजली की व्यवस्था नहीं है। 44 स्कूलों में चारदीवारी तक नहीं है।

➪ भारत में पांच वर्ष से कम का हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है।

➪ करीब 20 करोड़ भारतीयों को आज भी सुरक्षित पेयजल नहीं मिलता है और 70 करोड़ लोगों को ढंग का शौचालय नहीं उपलब्ध है।

➪ देश में 40 करोड़ लोग दो वक्त की रोटी से भी वंचित हैं जबकि सरकारी गोदामों में 430 लाख टन अनाज सड़ रहा है।

➪ पूंजीवाद की बुनियाद ही गैर-बराबरी पर टिकी है। इसका एक और प्रमाण यह है कि दुनिया के सबसे अमीर देश अमेरिका में गरीब बच्चों की संख्या 22 प्रतिशत है यानी हर पांचवां बच्चा गरीब है। यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार विश्व के 23 धनी देशों के करीब चार करोड़ सात लाख बच्चे गरीबी में रहते हैं।